सनडिएगो, अमेरिका
०५ अक्टूबर, २००४

संदेश संख्या – ७५

प्रबोध

प्रबोध वह प्रकाश है जिसके उदय से मनुष्य के सोचने के यन्त्र अर्थात् मन की द्वन्द्वमयी प्रकृति की सीमाबद्धता का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है जो कि विचारक और विचार, प्रेक्षक और प्रेक्ष्य, अनुभवकर्त्ता और अनुभाव्य, द्रष्टा और दृश्य, नियन्त्रक और नियन्त्रण हेतु वस्तु, चेतना और चेतना के अवयव आदि के मध्य अनावश्यक भेद उत्पन्न करता है। यह सीमाबद्धता शुद्ध–अनुभूति, शुद्ध–अन्तर्दृष्टि, शुद्ध दर्शन, शुद्ध–चिन्तन, नैसर्गिक–नियन्त्रण, पूर्वाग्रह रहित विश्लेषण और विवेकपूर्ण निर्णय की तटस्थ, पूर्ण, अनासक्त, बन्धनरहित एवं प्रयत्नरहित प्रक्रिया को प्रदूषित (क्षत–विक्षत) कर देती है । इस तरह यह चेतना के दूसरे तल में छलांग लगाने से रोकती है जहाँ सत् अर्थात् अस्तित्वमय शून्यता का वास होता है, अहंकार या अनुभव का नहीं ।

यह चेतना जिससे हम लोग परिचित हैं और जिसे स्पष्ट रूप से महसूस करते हैं, ''अन्यत्व'' (भगवत्ता) को किसी भी परिस्थिति में स्पर्श नहीं कर सकती क्योंकि यह अहंकार में अत्यधिक संलिप्त और तल्लीन है । फिर भी, जब यह अहंकार किसी तरह छूट जाता है तब कभी–कभी ''अन्यत्व'' की झलक मिल जाती है ।

''अन्यत्व'' की झलक एक आघात के रूप में होती है जो विभेदकारी चित्तवृत्ति को छिन्न–भिन्न कर देती है ।

प्रबोध की अवस्था में भी दैनन्दिन जीवन चलता रहता है लेकिन तब जीवन की घटनाओं का प्रज्ञा की स्थिति में अवलोकन मात्र होता है अर्थात् वहाँ अवलोकनकर्ता नहीं होता । अवलोकनकर्त्ता, अपने अतीत के पूर्वाग्रहों, दबावों, महत्वाकांक्षाओं और आपाधापी के कारण प्रज्ञा को रोक देता है । प्रबोध आध्यात्मिक बदमाशों और धार्मिक धूर्त्तों द्वारा चलाये जाने वाले ध्यान–केन्द्रों में घटित नहीं होता । प्रबोध की अवस्था में पूर्व–धारणा और पूर्व–निर्धारित निष्कर्षो के बिना प्रतिक्षण सहज रूप से जीवन जीया जाता है । अवधारणाओं की सीढ़ियों से समझदारी की दिव्य ऊर्जा को उपलब्ध नहीं हुआ जा सकता । प्रबोध अवधारणाओं का विरोध भी नहीं है । प्रबोध की ऊर्जा ''यहीं और अभी'' है न कि धारणाओं एवं पूर्वधारणाओं में । यह सजगता का स्वीकृति–भाव है न कि महत्वाकांक्षा और उपलब्धि का ।

स्मृति में, आवश्यक तकनीकी पंजीकरण के अतिरिक्त होने वाले मानसिक पंजीकरण के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है जो दैनिक कार्य करने एवं जीवन–जीने के लिए उपलब्ध विविधतापूर्ण दिव्य जीवन का ध्वंस कर देती है । तब मानसिक निवेश (psychological investment), सकारात्मक हों या नकारात्मक यथा–आसक्ति या विरक्ति, इच्छा या अनिच्छा, प्रशंसा या निन्दा, प्रीतिकर या अप्रीतिकर, लाभकर या अलाभकर, सभी का कुलयोग ''मैं'' के रूप में प्रकट होता है । अब यह तुच्छ ''मैं'' ही स्वयं से भिन्न एक दिव्य ''मैं'' तथा एक वैयक्तिक आत्मा और एक दिव्यात्मा की कल्पना करता है और फिर उद्धारक, सफलता, पाप, मुक्ति आदि के कुचक्र में फँस जाता है । यह भ्रांति चेतना में विखण्डन को, द्वैत को, परस्पर विपरीतों को, विकल्पों और विभाजनों को स्थायी बनाती है और इसी कारण मांग, इच्छा, लालसा, भय, निर्भरता, विश्वास–पद्धति, धर्मान्धता, द्वन्द्व, युद्ध आदि उत्पन्न होते हैं ।

आदर्शों, पवित्र–विचारों, स्वर्ग, लच्छेदार मुहावरों, संस्कृति, राष्ट्रवाद, अन्तरराष्ट्रीयता, ईश्वर, अनीश्वर, प्रबोध, शांति, बुराई पर विजय, साम्यवाद, पूँजीवाद आदि के द्वारा यह तुच्छ ''मैं'' स्वयं को ही सन्तु करने, महिमामण्डित करने तथा कुछ विराट करने की कोशिश करता है ।

स्मृति में तकनीकी पंजीकरण के साथ–साथ उत्पन्न हुए मानसिक पंजीकरण एवं मानसिक अवशेषों के कारण विविधतापूर्ण दिव्य जीवन क्षत–विक्षत हो जाती है। इससे ''मैं'' अर्थात् अहंकार का जन्म होता है और फिर इसे एक मिथ्या उच्च ''मैं'' के द्वैत द्वारा स्थायी किया जाता है । जबकि यह उच्च ''मैं'', निम्न ''मैं'' ही है । यह सन्त पापी ही है । ''मैं'' जब पूर्ण प्रयत्नशैथिल्य को प्राप्त हो जाता है और इस तरह इस द्वैत का विलय हो जाता है तभी दिव्यता का उदय होता है । यह परमपवित्र आमूल परिवर्तन है, चित्तवृत्ति में मूलभूत रूपान्तरण है और मनुष्य का, दुःख एवं दुःखभोग से पूर्ण एवं शर्त रहित मुक्ति है ।

प्रबोध शौचालय में प्रयोग होने वाले कागज की तरह है जो स्वयं को गन्दा कर आपकी सफाई करता है । इसे यथाशीघ्र फेंककर पानी में बहा देना चाहिए; अन्यथा, यह भी एक अनुभव बन जाएगा और बदबू करने लगेगा तथा चारों ओर प्रदूषण फैलाएगा ।

जय प्रबोध !